अलोकसामान्य चरित्र

दत्तोपंत ठेंगड़ी

आभार

न्यू इंग्लिश हायस्कूल, नागपुर के महाल विद्यालय में दिनांक ९ फरवरी १९९६ को पू. श्री माधव सदाशिव गोळवळकर गुरुजी की प्रतिमा का अनावरण भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक एवं रा.स्व.संघ के ज्येष्ठ प्रचारक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी जी के हाथों सम्पन्न हुआ।

उक्त समारोह में मा. ठेंगड़ी जी ने दिया भाषण इस पुस्तिका द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

उक्त भाषण को प्रकाशित करने की अनुमति न्यू इंग्लिश हायस्कूल असोसिएशन के पदाधिकारियों ने दी, इसलिए श्री बाबा साहब आपटे स्मारक समिति की ओर से संस्था को धन्यवाद!

प्रकाशक: श्री बाबा साहब आपटे स्मारक समिति, महाक, नागपुर २

प्रकाशन तिथि : ५ जून १९९६ (मूल मराठी)

हिन्दी अनुवाद: श्री बालकृष्ण जी भागवत, बोरीवली,मुम्बई-400091

परम पूजनीय श्री गुरुजी- अलोकसामान्य चरित्र

आज के इस समारोह के प्रारंभ में मंच पर उपस्थित होते ही मैंने परम पूजनीय श्री गुरुजी को परम पूजनीय बाला साहब के माध्यम से सादर प्रणाम किया। क्योंकि मेरी ऐसी धारणा है कि गुरुजी और बाला साहब, यह माने "शिवस्य हृदयम् विष्णु: विष्णोश्च हृदयम् शिव:।" ऐसे सम्बंध है।

गुरुजी के बारे में नागपुर के प्रबुद्धवर्ग को नया कहने-बताने लायक कुछ शेष होगा ऐसा मुझे नहीं लगता। यद्यपि अंग्रेजी में ऐसी कहावत है कि, किसी भी महापुरूष की उसकी अपनी जन्मभूमि में पूजा नहीं होती। और यह भी सही है कि बहुत सारे श्रेष्ठ पुरुषों के बारे में, उनके समकालीन लोगों में बहुत सारी गलतफहमियाँ प्रचलित रही है। सॉक्रेटिस, जीजस क्राइस्ट, ज्ञानेश्वर, तुकाराम जैसे अनेक श्रेष्ठ पुरुषों के बारे में, उनके समकालीन लोगों में बहुत सारी गलतफहमियाँ थी। परम पूजनीय गुरुजी इसके अपवाद नहीं है। और हमारे जैसे सामान्य लोग सोचते है कि, वे जब इतने श्रेष्ठ थे, तो उनके बारे में गलतफहमियाँ क्यों थी? अब इसका उत्तर 'कुमारसंभवम्' में कालीदास ने पार्वती के मुख से दिया है। वह ऐसा है-

"अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं

द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।" (कुमारसंभवम् ॥५.७५॥)

सामान्य लोग श्रेष्ठ पुरुषों की निंदा करते है, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषों का व्यवहार,बातचीत का तरीका अलोकसामान्य होते हैं और अचिन्त्य हेतुकम् माने उसके पीछे उद्देश्य क्या होगा, इसकी कल्पना करना भी सामान्य लोगों के लिये सम्भव नहीं होता। इसी वजह से वे गलतफहमी और निंदा करते है। गुरुजी के संदर्भ में यह एकदम सत्य है।

इसलिये नागपुरवासियों को गुरुजी के बारे में कुछ कहने का प्रयास करना मानो अनावश्यक हो, हास्यास्पद हो, तो भी, उनके कृतित्व के कहिए, व्यक्तित्व के कहिए, केवल एक पहलू का निर्देश कर मैं इस भाषण को विराम देने जा रहाँ हूँ।

गलतफहमी निर्माण होने का मतलब ही है कि,उनकी वाणी का और वयवहार का अंतर-संबंध जोड़ने की क्षमता का ना होना , समझने की क्षमता का ना होना। और इसका एक कारण यह है कि अन्य सभी श्रेष्ठ पुरुषों के समान गुरुजी के भी जीवन में उक्ति एवं कृति में 'अपेरेन्टिली पेराडॉक्सिकल' माने ऊपरी तौर पर परस्पर विरोधी दिखाई देने वाली बातों की वजह से उनका अन्तर-सम्बन्ध जोड़ना, सामान्य लोगों के लिये कठिन हो जाता है। अब उदाहरण के लिये मैं केवल दो-चार बातें यहाँ बताता हूँ।

पूज्य ताई याने उनकी माताजी कहा करती थी, कि मराठी चौथी कक्षा में एक कविता थी, "क्षणोक्षणी पड़े, उठे परि बळे, उड़े बापड़ी" (हर पल गिरती, जिद कर उठती, उड़ ती जाती बेचारी' बाण से घायल हुई पक्षिणी)।

यह जो कविता है, उसे गाते समय मधु हमेशा रोया करता था। उसका अन्त:करण इतना कोमल था। वहीं दूसरी ओर जिस संघ शिक्षा वर्ग में परम पूजनीय बाला साहब ने अपने प्रथम उद्‌बोधन में कार्यकर्त्ताओं से यह "नाऊ और नेव्हर" की घड़ी है, ऐसा कहा था,उसी वर्ष के संघ शिक्षा वर्ग में गुरुजी ने अत्यन्त कठोर शद्बो में कहा कि,"आय हेव कम टू टेक चिल्ड्रेन फ्रॉम द लेप्स ओफ देअर फादर्स"। सैकड़ों-हजारों साल पहले जीजस क्राइस्ट ने जो कहा, वही मैं आज कहता हूँ, ऐसा कहकर उन्होने उक्त वाक्य कहा। तब 'क्षणोक्षणी पड़े" गाते समय रोने वाला मधु , आगे चलकर इतना कठोर वाक्य कह सकता है, यह एक प्रकार का उपरी तौर

पर दिखने वाला अंतर्विरोध ही है। राष्ट्र जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उनका जैसा 'प्रोजेक्शन' रहा है, उसके संदर्भ में भी यही कहना उपयुक्त होगा। उन्हीं में से एक धार्मिक क्षैत्र है। उनकी ओर देखकर सभी को ऐसा लगता था कि आप कोई धार्मिक महापुरुष होंगे। इस बात का गलत उपयोग न हो, इसलिये वे बिना भूले स्वयंसेवको से कहा करते थे कि कोई भी मुझ जैसी दाढ़ी-जटा वगैरह रखने का करने का प्रयास न करे, अन्यथा वह एक गुट निर्माण होता है। उनका स्वयं का जीवन आध्यात्मिक रहा है , फिर भी उन्होने अपने आध्यात्मिक जीवन के बारे में या अपने गुरु स्वामी अखंडानंद जी के संबंध में कभी भी कुछ कहा नहीं। इसके विपरित यहीं नागपुर के कुछ प्रबुद्ध लोगों ने गुरुजी के साथ विवाद किया था, कि हम धर्म का पालन-रक्षण आदि को लेकर बातें करते है, परंतु लोग सवाल पूछते है कि ये किस धर्म का पालन और रक्षण करते है? यहाँ स्नान संध्या पढाई नहीं जाती, गायत्री मंत्र का पठन यहाँ कर सकते नहीं , कुछ पूजा पाठ आदि करने का कहा नहीं जाता, 'भागवत' आदि का पाठ होता नहीं, तो यह कौनसे धर्म का पालन कर रहे है? इसलिए ऐसा कुछ तो भी कर्मकांड करना चाहिए। सन् 1945 के अंत में और 1946 के प्रारंभ में इसी इलाके के लोगों ने गुरुजी के समक्ष इसे लेकर जिद की थी। गुरुजी ने कहा,"यह होगा नहीं" प्रत्येक कार्य में कोई ना कोई न्यूनतम कर्मकांड होना चाहिये, यह सही है, किन्तु कर्मकांड का अतिरेक ना हो। "अति नेम करू नये , केल्याविन राहू नये," यह जो समर्थ रामदास की उक्ति है, उसके अनुसार 'मिनिमम पॉसिबल' जितना 'रिच्युअल' ऐसा संघ में हमने रखा है, उससे अधिक रखेंगे नहीं। यद्यपि उनका अपना जीवन तथा वृति आध्यात्मिकता की थी, तब भी उसमें उन्होने एक संयम बनाये रखा। और इसलिये एक ओर करपात्री महाराज जैसे लोग उन पर आरोप लगाते, कि ये

धर्मभ्रष्ट हैं और लोगों का धर्मभ्रष्ट कर रहे है, दूसरी और बिल्कुल विपरित सिरे पर जाकर कुछ लोग आशंका प्रकट करते थे, कि, अरे, ये संघ का कहीं रामकृष्ण मिशन तो नहीं बनायेंगे, भजन मंडली तो नही बनायेगें ? दोनों परस्पर विरोधी आरोप एक ही कालावधि में सामने आते रहे है, तब एक 'अपरेन्ट पेराडॉक्स' माने उपरी तौर पर दिखाई देने वाला अंतर्विरोध। मूलत: उनका विरोध नहीं है। मूल सूत्र यही है,“अति नेम करू नये,केल्या विन राहू नये।“ लेकिन यह सभी के समझ में आना कठिन है, इसी वजह से गलतफहमी को अवसर मिलता है।

आर्थिक क्षैत्र में कम्युनिस्ट नेता हिरेन बाबू मुखर्जी ने एक बार मुझसे कहा कि, “अगर आप संघ वालों की सत्ता इस देश में आ गयी तो काशी के पंडे और पूंजीपतियों का दिल्ली पर राज होगा। और आप धर्म का नाम लेते हो , लेकिन धर्म क्या है आप को मालुम नहीं है।“ हिरेन बाबू और मेरे संबंध काफी अच्छे है। मैं उन्हे बड़े भाई के समान मानता हूँ। मुझे यहाँ यह स्वीकारने में किञ्चित भी संकोच नही हो रहा है कि हिन्दू धर्मशास्त्र का जितना अभ्यास मेरा है उससे कई गुना अधिक अभ्यास हिरेन बाबू का है। उन्होंने कहा, धर्म में यह नही बताया गया है जो आप लोग करते हो। गुरुजी हमेशा अपने भाषणों में सोशलिज्म और कम्युनिज्म का कड़ा प्रतिवाद किया करते थे। उससे ये लेफ्टिस्ट लोग सोचते थे कि वे केपिटेलिज्म के पक्षधर होंगे। वास्तव में गुरुजी केपिटेलिज्म के पक्षधर नहीं थे, क्योंकि शोसलिज्म, कम्युनिज्म और केपिटेलिज्म ये तीनों मटिरियेलिज्म से पैदा हुये है। जीवन का एक पक्षीय विचार करने वाले, तथा दूसरों के शोषण पर आधारित केपिटलिज्म का वह विरोध किया करते थे। संपत्ति (प्रोपर्टी) के

संबंध में अपनी धारणा को विशद करते समय मैंने हिरेन बाबू को यह श्लोक सुनाया-

"यावत् भ्रीयते जठरं, तावत् स्वत्त्वंहि देहिनाम्।

अधिकं योऽभिमन्येत् सस्तेनो दण्डमर्हति॥" (श्री मद्भागवतम्)

अर्थात,"अपनी देह की मांग के अनुसार कोई भी जितना अन्न ग्रहण कर अपना पेट भरता है, उतनी ही सम्पति धारण करने का अधिकार उस व्यक्ति को होगा। उससे अधिक की कामना करने वाला चोर है, इसलिये दण्डनीय है। यह सुनते ही हिरेन बाबू ने पूछा, "क्या यह आपके गुरुजी ने कहा है?" मैंने कहा "हाँ! उन्होने ही यह हमें बताया है।" इस पर हिरेन बाबू बोले "माफ करना! गुरुजी को लेकर हमारे मन में जो इमेज थी, उससे इस बात का मेल नहीं बैठता। उनके बारे में आज तक हमारी जो धारणा थी,लगता है, उसमें अब सुधार करना होगा।"

श्रीगुरुजी कहा करते थे, "संघ को केवल हिन्दुओं का संगठन करना है। उसमें सभी जातियों के लोग आ गये।" फिर भी खासकर महाराष्ट्र के समाजवादी जो खुद को प्रगतिशील बताते है, उनका एक केम्पेन ही था कि गुरुजी वर्णव्यवस्था के पुरस्कर्ता है, जातिभेद के पक्षधर है।" हम मजदूर क्षेत्र में इन सभी के साथ कई बार संयुक्त मोर्चा बनाते है। इसलिये उनके साथ रहना भी जरुरी होता है। उनके साथ मित्रता भी है और मित्रता का अभाव भी है, हमारे क्षेत्र में ये दोनों बातें साथ साथ चलती है। ऐसे ही पुणे में संयुक्त मोर्चे की एक बैठक में संघ के बारे में विषय निकला और मैंने कहा कि तुम्हारा ऐसा कहना गलत है, गुरुजी का ऐसा कोई मत नहीं था, तुम लोग पढ़ते भी नहीं और सुनते भी नहीं और अपने पुराने पूर्वाग्रह बनाए रखते हो। फिर भी उनका कहना था,"हमें मालूम है कि तुम्हारे गुरुजी

इतने ओर्थाडॉक्स है, कि कोकणस्थ-देशस्थ विवाह भी उन्हें मंजूर नहीं। हमारा एक कॉन्सीडरेट ओपिनियन है अंतरजातीय विवाहों के बिना समाज में एकता हो नहीं सकती ।" मुझे लगा-ये कहाँ से कहाँ आ पहुंचे। विवाह के विषय में मैं कोई ओथराइज्ड नहीं, इसलिए मैंने उनसे कहा, मैं तुम्हारे दूसरे प्रश्न के संबंध में कुछ नही बोल सकता, मेरा अधिकार नहीं। लेकिन आप जो कह रहे है, वह गलत है और कहा कि कुछ दशक पूर्व संपन्न हुऐ एक सुविख्यात अंतरजातीय विवाह के अवसर पर गुरुजी ने शुभ-आशीर्वाद भी भेजा था। उन्होने कहा,यह कुछ कॉनकोक्ट स्टोरी है। मैंने उनसे कहा, मैं आपको डॉक्युमेंट दिखा सकता हूँ। आप मेरे साथ घर चलें। वे ओर चार-पाँच साथियों को अपने साथ ले आये, क्योंकि उन्हें विश्वास था, कि डॉक्युमेंटस वगेहरा कुछ होगा नहीं। यह तो सिर्फ अपना इम्प्रेशन बनाने के लिये होगा, जैसे कि लेफ्टिस्ट कुछ न कुछ बातें करते है, वैसा ही इन लोगों का होगा। वे आये। मैंने उन्हें बैठने के लिये कहा। उन्होंने कहा,"नहीं-नहीं। पहले आप डॉक्युमेंट कहा है, वह बताइये। कागजात निकाल कर देने पर उन्होंने पढ़ना आरंभ किया। उनकी ऐसी जो अविश्वासपूर्ण धारणा थी, उसका भान होने से इस सभा में भी अगर कोई अति प्रगतिशील हो तो उसे दिखाने के लिये अपने डॉक्युमेंट साथ रखना जरूरी होगा। यह सोचकर मैं उन्हें साथ लाया था, क्योंकि प्रगतिशील रहना काफी आसान होता है, मगर कर्मठ रहना काफी मुश्किल होता है। उन्होंने कागजात पढ़ना आरंभ किया। अंतरजातीय विवाह के दोनों परिवार जो थे, उन दोनों ने मिलकर उन्हें प्राप्त हुये बहुत सारे लोगों के आशीर्वाद पब्लिश किये थे। ऊपर लिखा हुआ था 'नवल-परते' विवाह। दिनांक था रविवार 7 अक्टुबर 1945। शुभाशीर्वादों के अनेक संदेश, जिनमें महात्मा गांधी, स्वातंत्र्य वीर सावरकर, शंकराचार्य, डॉ. कुर्तकोटी, शास्त्र जगद्गुरु, अमृतलाल ठक्कर, केशरीलाल मश्रुवाला, अन्सारी, माधव राव बागल,

मा.स. गोळवळकर, श.वा. किर्लोस्कर आदि आदि महानुभावों के शुभसंदेश थे। गुरुजी ने जो संदेश भेजा था वह ऐसा था "आप शुद्ध बुद्धि से तथा समाज कल्याण की व्यापक दृष्टि रखकर अपने भावी जीवन की जो रचना कर रहे है, वह आपके लिए व्यक्तिश: निरंतर सुखदायी एवं समाज जीवन में वैमनस्य शून्य, स्नेहपूर्ण संकल्प, स्नेहपूर्ण एकत्व निर्माण करने वाली हो, ऐसी मेरी भगवान से प्रार्थना है। सद्विवेक तथा विशिष्ट ध्येय से प्रेरित होकर आपने ऐसा संबंध जोड़ा है और स्वभाविक रूप से समाज के उत्तर्ष का विचार अपका ध्येय होने की वजह से यह विवाह आपको परममंगल दायक होगा, इसमें कोई संदेह नहीं" यह पत्र दिनांक 7 अक्टुबर 1945 के दिन सम्पन्न हुये विवाह के उपलक्ष्य में दिया हुआ आशीर्वाद है। उसके पश्चात हम जानते है कि पुणे की वसंत व्याख्यानमाला में परम पूजनीय बालासाहब का जो भाषण हुआ, उस अवसर पर और यहाँ नागपुर में राष्ट्र-सेविका समिति का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, उसके उद्घाटन के भाषण में परम पूजनीय बाला साहब ने इसी बात पर बल दिया था। लेकिन सन् 1945 में गुरुजी जैसे नेता ने यह 'मैसेज' दिया होगा इस बात पर अविश्वास होने की वजह से हमारे उन सोशलिस्ट मित्रों ने कुर्सी पर बैठने से इंकार किया और वह डॉक्यूमेंट दिखाने की मुझसे जिद की, पर उसे पढ़ने पर, हताश हो उन्होंने कुर्सी पकड़ी। फिर उन्होने यह विषय कभी निकाला नही। उन्हें इम्बेरेस्मेन्ट ना हो, इसलिए मैंने तुरन्त चाय-बिस्किट लाने के लिए कहा। इसके माने यही कि, गुरुजी के विषय में एसी गलतफहमियाँ अकारण थी। और उसका कारण यही है कि इन सभी मामलों में समाज की धारणा महत्वपूर्ण है। यहाँ वर्ण नहीं, जाति भी नहीं, लेकिन लेफ्टिस्ट लोगों की विवाह के संबंध में, परिवार संस्था के संबंध में जो धारणा है, उसका यहाँ कहीं प्रचलन न हो, इस उद्देश्य से गुरुजी कुछ बातों का बड़े आग्रह से प्रतिपादन किया

करते थे । उसका आंकलन करने की पात्रता न होने से ऐसी गलतफहमियाँ निर्माण हुई ऐसा हमें दिखाई देता है।

राजनीतिक क्षेत्र के संबंध में अगर देखें तो, पहले प्रतिबंध का समय अकर्मण्यता में गया। लोग कारावास में रहते अथवा बाहर रहते, लेकिन दैनिक शाखाएँ लगती नही थी और गुरुजी कहा करते थे कि,जहाँ अकर्मण्यता है वहाँ ‘‘ऐम्पटी माइण्ड इज डेव्हिल्स वर्कशॉप।‘‘

अनेक शंकायें- कुशंकायें उस समय निर्माण हुई और विशेषकर ऐसी कि राजसत्ता अगर अपनी होती, तो यह प्रतिबंध नही लगता। इसलिये हमें राजकारण के संदर्भ में विचार करना चाहिये और यह स्वभाविक भी था। उस समय गुरुजी ने यह दृष्टिकोण बड़े आग्रह पूर्वक सामने रखा कि, ”राष्ट्र का पुन:निर्माण राजसत्ता के माध्यम से हो नहीं सकता। कहीं भी हुआ नहीं है। राजसत्ता का अपना महत्व है, किन्तु वह सीमित है।वह एक विशिष्ट पद्धति का है। परन्तु राष्ट्र पुन:निर्माण का आधार सर्वसामान्य नागरिकों की राष्ट्रीय चेतना के स्तर को ऊपर उठाना है और उसके माध्यम से अगर लोकशक्ति जाग्रत होती है, तो इस लोकशक्ति के दबाव में रहने वाली राजशक्ति अथवा धर्मदण्ड के दबाव मे रहने वाला राजदण्ड राष्ट्र के लिए उपयुक्त ऐसे अनेक काम कर सकता है। परंतु लोकशक्ति अथवा धर्मदण्ड नही होगा और अनियंत्रित राजसत्ता होगी तब क्या होगा यह कहना मुश्किल है। और इसलिए लोकशक्ति और धर्मदण्ड होना यह प्राथमिकता है। फिर उसके अंतर्गत राजसत्ता, राजकारण यह भेद उन्होने साध्य-साधन विवेक के रुप में निरुपित किया था। परंतु जैसे पेंडुलम के एक सिरे पर जाने पर उसे अगर सुवर्णमध्य मे लाना हो तो उसे दूसरे सिरे पर ले जाना आवश्यक होता है। ऐसा देखने में आया है कि जिन्हे भ्रष्टाचार करने की

इच्छा नही हो तथा जिनके चरित्र के बारे में तनिक भी संदेह होना संभव नहीं, ऐसे लोग भी एक दुर्बलता के शिकार बन सकते है और वह होती है सामाजिक प्रतिष्ठा की भावना। बड़ी पोजिशन आई याने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त होगी, ऐसी कल्पना निर्माण होना और उस के लिये राजनीति की ओर आकृष्ट होना स्वभाविक है।

राजनीति से अलिप्त होकर राष्ट्र पुन:निर्माण के लिये केवल दक्ष-आरम्, कबड्डी करते रहने की प्रवृति निर्माण करना अधिक कठिन कार्य है। इसलिए पेंडुलम एक एक्सट्रीम तक जा सकता है, इस बात की जानकारी होने की वजह से ही दूसरे एक्सट्रीम तक ले जाने का आग्रह केवल शाखा के माध्यम से ही हो सकता है। यह भूमिका उन्होने स्थान स्थान पर रखी।

उस समय पश्चिम महाराष्ट्र के लोग गुरुजी का कुछ मार्गदर्शन करना चाहते थे।। वे मानते थे कि, गुरुजी संघ को सही ढ़ंग से चला नहीं पा रहे। हमें ही उन्हें कुछ सिखाना चाहिये। यही सोचकर कुछ 7-8 लोग यहाँ आये थे। मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं थी। मैं किसी बहाने बाहर गया था। उस समय मैं इंटक और विद्यार्थी परिषद् में काम कर रहा था। रात पौने ग्यारह बजे मैं कार्यालय में पहुँचा। पांडुरंगपंत क्षीरसागर ने कहा,अरे! वे लोग आये है। कल दोपहर को 3 बजे गुरुजी के साथ बैठने वाले है और आपकी भी राह देख रहे है। आपके साथ बातचीत करने के बाद सोने वाले है। तब मैं ऊपर जा पहुँचा। 7-8 आदमी थे। उन्होंने कहा, हम आपकी प्रतिक्षा कर रहे थे। हमें आपका अभिनन्दन करना है। मैने पूछा, वह किसलिए ? उस पर उन्होंने कहा, गुरुजी बार-बार कह रहे है, केवल दक्ष-आरम्-कबड्डी, और उन्ही की आँखों के सामने आप प्रचारक है, कार्यालय में रहते हैं और एक ओर

इंटक में काम करते है, तो दूसरी तरफ विद्यार्थी परिषद् में काम करते है। आप में कमाल की हिम्मत है। मैंने कहा, आप जो कुछ कह रहे है, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। उस पर उन्होंने कहा, गुरुजी का शाखा के बारे में अनन्य आग्रह रहता है, और आप कैसे मुक्त है इन सब बातों से। मैंने बताया,"परम पूजनीय गुरुजी और परम पूजनीय बालासाहब ने मुझे इंटक में जाने के लिए कहा, इसलिये मैं उसमें गया और विद्यार्थी परिषद् का काम प्रारंभ करने का भी आप ही ने कहा, तभी तो मैं वह कर रहा हूँ। इसमें मेरी अपनी कोई चोईस नहीं थी। मेरा जवाब सुनते ही ' स्विच ओफ' हुआ। लोग आराम करने अपनी-अपनी जगह लोटे। फिर दूसरे दिन वे सभी गुरुजी से आशीर्वाद लेकर लौट गये। इसके माने यही, कि हमारे अपने लोगों में भी ऐसी गलतफहमियाँ थी। वैसे ही राजनीति के बारे में भी होता है।

अलग-अलग स्थानों पर ओडियन्स कैसा है, लोगों की मानसिकता कैसी है, इसे देखकर गुरुजी के भाषणो का स्वरुप होता था। उत्तर क्षेत्र के एक प्रान्त में श्री गुरुजी गये। वहाँ 'ओव्हर पोलिटिकलायजेशन' है ऐसा गुरुजी के ध्यान में आया । गुरुजी ने कहा,"तुम ऐसा करो, शाखा बंद करो। एक बार राजनीति करो, राजनीति करने का तुम्हारा शौक पूरा होने के बाद में शाखा आदि हम आराम से करेंगे। कोई जल्दी नहीं है।" वहाँ से ढ़ाई महिने बाद दक्षिण में गये। तब तक वहाँ जनसंघ का काम शुरू हुआ नही हुआ था। शुरु हुआ नहीं, इतना ही नहीं तो वहाँ के प्रमुख कार्यकर्ताओं का कहना था कि हम राजनैतिक कार्य यहाँ प्रारंभ ही न करेंगे। राजनैतिक कार्य नही करेंगे, इसके कारण लोग किसी भी कार्यकर्ता को जनसंघ का काम सौंपने को राजी नही थे। इसलिए जनसंघ की इकाई का भी गठन नही हो पाया था। वहाँ पर गुरुजी ने कहा,"अरे! आप लोग यह क्या कर रहे है। यह

अपना ही तो काम है। हमने दीनदयाल उपाध्याय जैसा कार्यकर्ता इस कार्य के लिये 'स्पेअर' किया है। इसलिए यह अपना काम है। हमें कार्यकर्ता देने चाहिए और यह काम खड़ा करना चाहिये। अब दो-ढ़ाई महिनों के अंतराल से 'अपरेन्टली पेरॉडॉक्सिकल' माने परस्पर विरोधी दिखने वाले स्टेटमेंट्स आये।

मुझे याद है कि, धर्मदण्ड हो और उसके अधीन राजदण्ड हो और उसके लिए लोकशक्ति का जागरण हो आदि आदि ऐसा यह प्रतिपादन हुआ करता था, परन्तु जिस समय जनसंघ की स्थापना हुई उस समय डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विशेष रूप से श्री गुरुजी से मिलने नागपुर आये,उस समय मुख्य मुद्धे थे हिन्दू कम्युनिज्म, हिन्दुत्व, हिन्दुराष्ट्र आदि आदि। मैं उन विषयो पर बात नही करूंगा। परंतु डॉ. मुखर्जी के भाषणों में हमेशा 'हम एक आदर्श विपक्षी दल निर्माण करेंगे, प्रभावी विपक्षी दल निर्माण करेंगे।' ऐसा बार बार आता था और यह समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुआ था। इस संदर्भ में गुरुजी ने कहा,"यह आप क्या कह रहे है कि हम आदर्श और प्रभावी विपक्षी दल निर्माण करेंगे? आपने जो जनसंघ का निर्माण किया है, वह किसी प्रभावी और आदर्श विपक्षी दल निर्माण करने के लिये नहीं किया है। आपने सरकार बनाने के लिये जनसंघ का निर्माण किया है। इसलिए आपको अभी से साफ-साफ कहना चाहिये, "वि विल फॉर्म दि गवर्नमेंट," हम सरकार बनायेंगे। और सरकार बनाने के बाद हम क्या क्या करने वाले है , इसका निर्देश आपके घोषणा-पत्र में होना चाहिये।" और मुझे स्मरण है कि सन् १९६६ के दिसंबर माह में, तब तक देश में कॉंग्रेस की पकड़ कहीं भी ढीली नही पड़ी थी, ढ़ीली होगी ऐसी आशा भी दिखाई नहीं देती थी, उस समय उत्तर-प्रदेश का शीत शिविर सम्पन्न हुआ। उसमें जनसंघ के कुछ कार्यकर्ता गुरुजी से

मिलने आये। गुरुजी ने जनसंघ के कार्य की जानकारी ली और इसी क्रम में गुरुजी ने एक और सवाल किया,"क्या आपने शेडो केबिनेट बनाया है?" उनमें से कुछ लोग तो शेडो केबिनेट का अर्थ भी नही जानते थे। गुरुजी ने वह समझाया। तब उन्होंने कहा, नही, अभी तक तो बनाया है। गुरुजी ने कहा,"पहले शेडो केबिनेट बनाइये।"अब एक ओर उनका राजशक्ति को अतिरिक्त महत्व न देने का आग्रह और दूसरी ओर उनके यह उद्‌गार परस्पर असंगत दिखाई देते है, लेकिन उनमें एक सूत्र है, एक बैलेन्स है, संतुलन है।

ऐक महत्व का दिखाई देने वाला पैराडॉक्स ऐसा है कि दो व्यक्तियों के साथ हुआ गुरुजी का ऐक ही तरह का संभाषण। उनमें से एक व्यक्ति माने पं. दीन दयाल उपाध्याय, जो आज हमारे बीच में नही है , लेकिन दूसरे व्यक्ति जिनके साथ संभाषण हुआ, वे आज हमारे बीच में है,वे हैं हमारे पंजाब प्रान्त के सह-संघचालक लाला लाजपतराय जी। संभाषण ऐक ही था। उन दोनों ने अलग-अलग बातचीत करते समय गुरुजी से कहा,"गुरुजी! राजनीति में हमारा मन नही लगता। आप हमें राजनीति क्षैत्र से बाहर निकाल कर सीधे संघ कार्य में 'दक्ष-आरम्' करने भेजिए। दोनों को ही गुरुजी ने ऐक ही जवाब दिया। कि आपका राजनीति में मन नहीं लगता, आपको राजनीति में रुचि नहीं है, यह जब तक मुझे मालूम है तब तक ही मैं आपको राजनीति में रखूँगा। और जिस दिन मुझे यह लगेगा कि राजनीति में आपकी रुचि निर्माण हो गयी है, राजनीति में आपका मन रमने लगा है, उसी दिन तत्काल आपको राजनीति से विथड्रा कर लूंगा और और दक्ष-आरम् करने का काम सौंप दूंगा। यह सब 'अपरेन्ट पेराडॉक्स', माने ऊपर-ऊपर से दिखाई देने वाले विरोधाभास है। किन्तु ऐसा जो होता है, उसमें अन्तर्निहित

दूरदर्शिता, सूक्ष्मता और संतुलन यह ध्यान में नहीं आने के कारण सर्वसामान्य व्यक्ति को गलतफहमियाँ हो सकती है।

निंदा करना यह मनुष्य का स्वभाव है। अंतिम एक घटना बताता हूँ। गुरुजी के देवाहसान के तीसरे दिन चिटणीस पार्क में जो सभा हुई, उस सभा में मेने यह घटना बताई थी, उसके कारण भी गलतफहमियाँ हुई थी। प्रसंग ऐसा था कि श्री गुरुजी के अन्तिम बीमारी के समय उनसे मिलने के लिये बापूराव मोघे दिल्ली से आये थे। वापिस दिल्ली लौटने से पहले जब ऊपर आये, तब मैं वहीं खिड़की के पास खड़ा था। बापूराव ने गुरुजी को प्रणाम किया। गुरुजी ने उन्हें बैठने के लिये कहा और तुरन्त मुठाल मामा को बुलाकर कहा "अरे! जरा फोन लगा कर पता तो करो ग्रांट ट्रंक देरी से तो नही चल रही है? नही तो स्टेशन पर ये क्या करेंगे? उसके पश्चात किसी कारण के न होते हुये, कोई संदर्भ या विषय सामने न होते हुये, उन्होने बापूराव से सवाल किया, "बापूराव आपने यह पढ़ा है क्या कि योगी अरविन्द जब कारागृह में थे, तब उन्होने ऐसा लिखकर रखा है कि कारागृह में रहते समय स्वामी विवेकानंद उन्हे रोज कारागृह में मिलने आते थे। और उन्हे योग सिखाते थे। विवेकानंद जी का महानिर्वाण सन् 1902 में हुआ और अरविन्द तो सन् 1908 में कारागृह में थे।"बापूराव बोले, "मैंने कहीं पढ़ा नहीं।"फिर थोड़ी देर रुक कर गुरुजी बोले "भगवान कोई मिशन देकर किसी को भेजता है। वह मिशन अगर छोटा हो, तो एक जीवनकाल में समाप्त हो सकता है, लेकिन वह मिशन अगर बड़ा हो तो ऐसे व्यक्ति का देहावसान होने पर भगवान उसे मोक्ष प्राप्त करने की स्वतंत्रता नहीं देते। अशरीरी अवस्था में रहते हुये, भगवान ने उसे जो मिशन सौंपा है, उसकी सुपरव्हिजन करना उसके लिए आवश्यक होता है तथा उस मिशन के पूर्ण

होने पर ही उसे मोक्ष का अधिकार प्राप्त होता है।" मैंने उस सभा में इसे उद्धृत करने पर नागपुर के एक समाचर पत्र ने गलतफहमी फैलाने वाली बातें छापी। मेरे भाषण का वृतांत ऐसा शीर्षक देकर प्रकाशित हुआ – "गुरुजी को मोक्ष का अधिकार नहीं" – ठेंगड़ी यह समाचार प्रकाशित होने पर मुझे ऐसे पत्र प्राप्त हुये कि – 'हम आपको गुरुजी के भक्त मानते थे। आप ऐसे हीन स्तर पर, उद्धृत होकर कुछ कहेंगे, ऐसी आशा नही थी।' संक्षेप में यही कि,"अलोकसामान्यमचिन्त्य हेतुकम् द्विषन्ति मंदाश्चरितं महात्मनाम्।"इसका ख्याल करते परम पूजनीय गुरुजी के बारे में, जैसे संभाजी महाराज के नाम पत्र लिखते समय समर्थ रामदास ने कहा था – "शिवरायाचे आठवावे रुप, शिवरायाचा आठवावा प्रताप। शिवरायाचा आठवावा साक्षेप भूमंडळी॥ शिवरायाचे कैसे बोळणे, शिवरायाचे कैसे चाळणे। शिचरायाची सळगी देणे कैसे असे॥"(स्मरण करें शिवाय का, स्मरें उसका प्रताप। स्मरण करें शिवराय का साक्षेप इस दुनिया में॥ शिवराय बोले कैसे, शिवराय कैसे चले, शिवराय दोस्ती निभाते कैसे॥)

इसी पद्धति से हम श्री गुरुजी का स्मरण करें, ऐसी प्रार्थना करते हुये मैं अपने भाषण को विराम देता हूँ।

(न्यू इंग्लिश हायस्कूल, नागपुर के महाल स्थित विद्यालय में दिनाँक 5 फरवरी 1996 को परम पूजनीय श्री गुरुजी के चित्र के अनावरण के अवसर दिया गया भाषण । मूल रूप से मराठी में श्री बाबासाहेब आपटे स्मारक समिति ,महाल , नागपुर द्वारा दिनाँक 5 जून 1996 को प्रकाशित किया गया।हिंदी अनुवाद श्री बालकृष्ण भागवत ,मुम्बई)